उनकी निर्भीकता, कर्मठता और स्वार्जित-गरिमा वास्तव मे ही प्रेरक और चमत्कृत कर देने वाली है।

"साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो" मे उनके विभिन्न लेखो का जो उपयोगी और जीवन्त संग्रह भाई श्री विपिन जारोली ने किया है, उसमें मेरी एक कल्पना साकार हुई है जो कुछ वर्ष पहले मेरे मन मे आई और मैंने आदरणीय श्री जैन के समक्ष स्पष्ट की थी। लेखो का यह बहुआयामी सग्रह श्री जैन के अन्तरग का सम्पूर्ण छायाचित्र प्रस्तुत कर देता है। उनके सपनो को बखूबी व्यक्त कर देता है। लेखो मे विषय, देश, काल की विविधता होते हुए भी विचारो की एकलक्ष्यता और सत्य की स्पष्ट घोषणा उसे बिखरने नही देती है।

नवयुवक विचारक जहा इन लेखो से प्रेरणा और मार्ग-दर्शन प्राप्त करेगा, वहा समाज की बुजुर्ग पीढी सोचने-समझने के लिए एक नई खुराक प्राप्त करेगी। पुस्तक का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हो, यही मगल कामना।

आगरा
दिनाक ६/६/१९७६

—**श्रीचन्द सुराणा 'सरस'**
लेखक एव पत्रकार

[३]

प० श्री 'उदय' जैन के विभिन्न लेखो को सकलित करके 'साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो' पुस्तक रूप मे श्री जैन शिक्षण सघ कानोड प्रकाशित कर रहा है, यह जानकर खुशी हुई। अपने इस लेख-सग्रह मे श्री 'उदय' जैन, जैन समाज की एकता पर महत्त्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं।

ऐसे अच्छे पुस्तक के प्रकाशन के लिये श्री जैन शिक्षण सघ कानोड की मैं सफलता चाहता हू और शुभेच्छायें प्रदान करता हू।

युग बदल रहा है

क्या कहा ? युग बदल रहा है। युग तो प्रतिपल परिवर्तित होता आया है। एक समय जो नियन्त्रित माना जाता है। वह भी परिवर्तनशील है। आज है, वह कल नही रहेगा। कल था, वह आज नही है।

वर्तमान युग के पुजारी वर्तमान की प्रशसा करते है, पुराने मानव, पुरातन युग को याद करते हैं। युग एक नियन्त्रित काल का नाम है, जिसे विज्ञ पुरुषो ने हजारो वर्षों के दायरे मे बांधा है। कही १२ वर्ष का युग तो कही ५ वर्ष का युग माना जाता है। इसका सही नाप लेखक की लेखनी या वार्ता कर्त्ता की वार्ता पर निर्भर है।

मैं युग को सौ वर्ष के दायरे मे देखता हू। जिसे शताब्दी कहते हैं। अभी भारत के विक्रम सवत्सर की २१वी शताब्दी चल रही है। इसी शताब्दी के आरभ से युग बदलना प्रारभ हो गया। आज २९ वर्ष मे कलयुग-राकेट युग बन गया है। वृहस्पति की यात्रा चल रही है। चन्द्र यात्रा कई बार हो चुकी है। मगल ग्रह की ओर बढना प्रारभ हो गया है। जैसे चन्द्र तल पर मानव उतर चुके हैं, उसी तरह मगल-ग्रह पर उतरने का प्रयास चालू है। शताब्दी के तीस वर्ष पूरे होते-होते मानव, मानवता के लिए भी आगे बढेगा। इसी युग मे राष्ट्र

मस्तिष्क धीरे-धीरे विकसित हो रहा है। अन्ध श्रद्धा की जजीरो से छुटकारा पाकर स्वतत्र सम्यग्दर्शन की उपासना की ओर गतिशील है।

३० वर्ष पूर्व एक सप्रदाय दूसरी सप्रदाय को हीन दृष्टि से देखती थी। गुरुओ द्वारा सम्यक्त्व दिलाया जाता था। इसी कारण एक सप्रदाय, दूसरी सम्प्रदाय को मिथ्या और उनके अनुयायियो को मिथ्यात्वी कहते थे। एक मजहब का अनुयायी दूसरे मजहब के अनुयायी को म्लेच्छ, काफिर, मिथ्यात्वी आदि कह कर तिरस्कृत करना था। सम्प्रदायिक प्रचार मे मानवो की निर्मम हत्याए धर्म का कार्य समझी जाती थी। आज युग बदल रहा है। मानव-मानव को समझने लगा है। जाति से ऊपर उठने लगा है। ऊँच नीच का भेद भूलने लगा है। अच्छा बुरा धर्म कहना बद करने लगा है। सभी जाति, वर्ग, देश और धर्म वाले एक साथ बैठकर अपना समन्वय मार्ग प्रशस्त करने लगे है।

युग बदल रहा है, युग बदल रहा है की मीठी ध्वनियाँ समवेत स्वरो मे हृदय एव श्रव्य यत्रो के द्वारा गाई जा रही हैं। समय एक दम बदल रहा है। कल क्या होने वाला है, कोई कुछ नही बोल पाता। चीन और अमेरिका एक साथ बैठ स्नेह बढाते हैं तो रूस और अमेरिका भी पीछे नही रहते। भारत-पाक सम्बन्ध भी ठीक बनने जा रहे है। यदि नही बने तो आने वाला युद्ध निर्णायक युद्ध होगा।

भारत सदा सब जातियो धर्मों तथा भाषाओ को अपनाने वाला देश रहा है। पडोसियो से नेह चाहता है, लेकिन पडौसी यदि घृणा करता है, तो वह उसका प्रतिफल अवश्य पायेगा, इसमे पूर्ण विश्वास करता है। भारत ही एक ऐसा देश है, जिसने प्राचीनकाल मे आध्यात्म ज्ञान का विस्तार किया। मानवो के हित मे यान्त्रिक उन्नति की जगह आत्मिक उन्नति की ओर बढाने का प्रयास किया। मानवो को हिल-

प्रजा को चूसने वाला कोई नही रहेगा । रहेगे सभी विवेकशील मानव और मानवो के हित के लिए धर्म, राष्ट्र, भाषा, साधन और साधनो का उपयोग ।

इक्कीसवी शताब्दी युग परिवर्तन की शताब्दी है । अत: प्रतिदिन युग बदल रहा है । समाज बदल रहा है । धर्म बदल रहा है । वर्ग बदल रहा है । मस्तिष्क बदल रहा है । राष्ट्र बदल रहा है । विश्व बदल रहा है । विश्व का क्रम बदल रहा है । अनन्त विश्व का परिक्रमण बदल रहा है । इसीलिए मैं कहता हू—युग बदल रहा है और शीघ्र बदल रहा है । ईश्वरीय युग आ रहा है । सर्वोदय युग आ रहा है ।

सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु ख भाग भवेत् ।।

जैन प्रकाश ६ अक्टूबर, १९७२ ई०

श्री अमर भारती



विस्तार के बदले द्वेष, लडाई-झगडे बढाये है। सहयोग की जगह असहयोग का वातावरण बनाया है। सहअस्तित्व को न पाकर अपने-अपनो का अस्तित्व जुटाया है। जो जिस मजहब का अनुयायी होता है, उसी की देखभाल और सुख-सुविधा का खयाल रखता है। मानव धर्म के टुकडे-टुकडे हो गए है। कोई अपने को हिन्दू कहता है तो कोई मुसलमान, कोई क्रिश्चियन तो कोई बौद्ध। इनमे भी छोटी-छोटी कई सम्प्रदायें है। इस तरह इतने सारे वाडो मे मानव जैसा विकसित बुद्धि का प्राणी फँसा हुआ है। इन बाडो के आगे उसकी गति नही दिखती। इन बाडा-बन्दी मे ही वह ईश्वर ढूढता है। स्वर्ग और मोक्ष देखता है। ये मजहब के प्रचारक एक दूसरे से घृणित व्यवहार करते नही चूकते। बडे से बडे सिद्धान्त तात्विक, तार्किक और वैज्ञानिक भी इन बाडाबन्दियो मे फँसे हुए हैं, लेकिन उनकी बुद्धि अब इन बाडाबन्दियो को तोड कर अखण्ड मानव समाज, अखण्ड मानव-धर्म और अखण्ड मानव-राष्ट्र बनाने की कल्पना करने लगी है।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे पहुचे हुए मानव भी हैं, जो मानव समाज को मानते हुए भी इससे बढ कर निकट सपर्क मे आने वाले जलचर, थलचर और खेचर प्राणियो के साथ भी सहयोग करना चाहते है और अपनी मैत्री बढाना चाहते है। कुछ ऐसे भी मानव हैं, जो जीवत्व वाले सभी तत्वो और उनके क्रियाशील रूपो तथा आकृतियो का भी सगठन करना चाहते हैं। उनके साथ भी मैत्री और सहकार का हाथ बढाना चाहते हैं। वे ऐसा समाज देखना चाहते है जिसमे तमाम जीवत्व समा जाय।

गरीब से गरीब और मूर्ख से मूर्ख के दिमाग मे भी यह आ गया है कि दुनिया की उपलब्ध जितनी वस्तुए है, सबके लिए समान उपयोगी हैं। सबको उपयोग करने का अधिकार है। कुछ अधिक सग्रह करता और कुछ साधनहीन क्यो रहे? धरती, धन और साधनो का

है, जो अदृश्य रूप से सारे लोको मे गतिमान है। जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप मे सबसे वर्तमान है। वही सत् है। वही ॐ है। वही प्रणव शक्ति है और वही पूर्ण है। उसी का अस्तित्व था, है और रहेगा। अत वही हमारा इष्ट है।

मंत्र

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते ॥

उद्देश्य

(१) प्राणि मात्र के एक जगत् की स्थापना करना।

(२) सम्पूर्ण प्राणि जगत् की पूर्ण उन्नति करना और उन्नति मे सहयोग करना।

(क) प्रथम चरण मे बिना धर्म जाति व देश-भेद के अखण्ड मानव समाज की स्थापना करना, मानव धर्म और मानव राष्ट्र का निर्माण करना और तीनो के प्रयत्न मे पूर्ण योग देना।

(ख) द्वितीय चरण मे मानव जाति के इर्द-गिर्द जो अन्य जलचर नभ-चर और थलचर प्राणि समाज है, उनके साथ सपर्क स्थापित करना और उनकी उन्नति मे पूर्ण योग देना।

(ग) तृतीय चरण मे शेष सभी चर और अचर प्राणि-समाज को अपनी समाज का अग समझ कर उसकी उन्नति मे योग देगा।

(३) सभी प्राणियो मे ज्ञान और क्रिया का पूर्ण विकास कर अनेकान्त एव सहकार धर्म का प्रसार करना।

मे लाना। क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायो को नष्ट करना। अनर्थ दन्ड का त्याग, समता का नियमन और अतिथि का स्वागत करना। इस लोक और परलोक के सुख की कामना से रहित वन कर, साधनो का कभी सग्रह नही करना। उपभोग साधन समान भाग से वितरित कर जीवन यापन करना।

(८) पृथ्वी पिण्डो के अलावा अन्य पिण्डो के अपने तत्व वाले साथियो को अपना मानना और उसके साथ सपर्क स्थापित करने मे पूर्ण योग देना।

(९) सच्चिदानन्दमय परमतत्व को पाकर उसी मे समा जाना, तत्वमय हो जाना। तत्वमसि मे लय हो जाना। अजीव तत्व मे छुटकारा पाकर मुक्त वन जाना।

(१०) जो अपनी परम्परा के अनुयायी हैं, उनमे भी उपर्युक्त कार्यो की गति रहे, इस तरह का सवोधन, अन्तिम जीवन क्षण मे अनुयायियो को देना और उन्हें कर्त्तव्य के प्रति सकेत करना।

कार्यकर्ता

(१) **परम साधक**—जो राग-द्वेष को जीत कर तथा अन्तर के क्रोधादि दुश्मनो और वाहर के सकल जगत् के हृदयो को जीत कर अरिहत और अरहत वन जाते हैं, जो अपने परम तत्व को पा जाते हैं और जिनका सपूर्ण लोक का प्राणी-समाज अपना वन जाता है। प्राणी-समाज के साथ की यह पूर्ण अभिन्नता सहज्योति का प्रकाश करती है। ऐसी ज्योति वाला हमारा परम साधक है। वह सवका नायक है, हमारा दिव्य पुरुष है, वही हमारा प्रधान कार्यकर्ता है।

(२) **सफल साधक**—जो कभी प्राणी-समाज के वीच कार्य करता रहा है और साधना मे सफल होकर तत्व मे समा गया, सच्चिदानन्दमय वन गया, वह सफल साधक है।

संस्कृति का अर्थ

सस्कृति सभ्यता का मूल है। वह एक ऐसी बन्धनात्मक कृति है जिसके द्वारा जीवन के प्रवाह को उत्कीर्ण या प्रकीर्ण किया जा सकता है। सभ्यता पार्थिव रूप है और सस्कृति आत्मरूप मानसिक आधार है।

सस्कृति की व्युत्पत्ति स+कृति से हुई है। स से सम्यक् या समान प्रकार की कृति अर्थात् क्रिया रूप मे व्यवहृत प्रवृत्ति को सस्कृति कहते है। तात्पर्य यह, जो प्रवृत्ति समाज मे समान रूप मे व्यवहृत है, उसे ही सस्कृति कहते हैं। दूसरे शब्दो मे प्रत्येक प्राणी वर्ग की सामूहिक कृति का ही नाम सस्कृति है। इसीलिए उसे सस्कारो की सृजनहारी माता भी कहा जाता है। सस्कृति प्राणियो के आचार, व्यवहार और जीवन-यापन की एकता का ही दूसरा नाम है। हर प्राणी का जीवन-यापन का अपना निजी ढग होता है और साथ ही हर समझक प्राणी समाज मे एकत्र होकर रहना निभना और सामाजिक बन्धनो के अनुकूल चलना पसन्द करता है। अतएव जब प्राणी, अपने समाज मे सगठित या एकत्र होकर रहता है, तो उसे जीवन-यापन के अपने निजी ढग को सामूहिक ढग मे परिवर्तित करना पडता है। अपनी तरह दूसरो को समझकर उदारभाव प्रकट करने पडते हैं और इस तरह की निबहने की जो प्रवृत्ति है—वही सस्कृति कहलाती है।

प्रत्येक प्राणी-समाज के जीवन-यापन के नियम या तरीके होते हैं, जिन्हे वह समान रूप से निभाने की कोशिश करता है। समय, क्षेत्र

है। वे मानवेत्तर प्राणियो और मानव सस्कृति मे बहुत साम्यता का अनुभव करते हैं। सामूहिक जीवन के निर्वाह के मूल स्रोत सस्कार कहलाते हैं और उनकी सुव्यवस्थित कृतियां समान रूप मे अनुभूत होने वाली सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् की प्रवृत्ति की एकता भी सस्कृति है।

इस प्रकार सस्कृति भावात्मक एकता का मूल स्रोत भी है। वह अनेक रूप होते हुए भी मूल मे एक है। समाज मे शान्ति और व्यवस्था सभी को अभीष्ट है और शान्ति की अनुभूति आनन्द के रसानुभव के व्यक्त रूप विश्व के सभी वर्गों मे करीब-करीब समान है। साधनो की भिन्नता और प्रयोगो की भिन्नता अनिवार्यत होती ही है, पर मानव एकता का मूल आधार सस्कृति के बृहद् रूप मे मिल ही जाता है।

इस प्रकार सस्कृति सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की आधार शिला है। प्राणी या मानव सस्कृति के द्वारा आमोद, प्रमोद और विनोद का प्रेय और शान्ति, व्यवस्था तथा मुक्ति का श्रेय ग्रहण करते है।

वस्तुत अनुरुक्ति और मुक्ति दोनो ही सस्कृति की देन है। भोग और त्याग एक दूसरे के पूरक है। भोग के बाद त्याग आवश्यक है। इसी तरह अनुरुक्ति के बाद मुक्ति आवश्यक है। जीवन श्रेयस्कर-सस्कृति मुक्ति को प्रदान करती है। कर्मो का आत्मा से दूर होना ही मुक्ति है। सच्चिदानन्द की अभिव्यक्ति ही मानव की परिष्कृत सस्कृति है। इसी अर्थ मे सस्कृति पूर्ण शाश्वत और हितकारी है। सस्कृति भुक्ति और मुक्ति दोनो के लिए आवश्यक है। सस्कृति का सही अर्थ-सार्थक्य (सार्थकता) मुक्ति मे है।

—आलोक वार्षिकी

—वसुमति मासिक

श्रीर मान का विस्तार करना । बदले मे धनिको को सघ नेता बनाकर स्वर्ग के स्वप्न दिखाना । यही परिधि अनेक घेरो-सप्रदायो को जीवित रख रही है ।

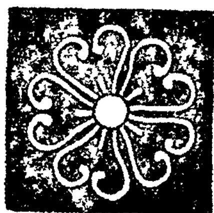
कहते हैं—अपनेआपको अकिंचन-अपरिग्रही, लेकिन इनके भक्तो का जितना परिग्रह है, सब इन्ही के इशारो पर नाचता है । स्वय सेठ बने हुए हैं । मुनीम रूपी सेठ श्रावको को धन सभला रखा है । ग्रात ये सघ का श्रेय नही कर सकते । कहने को मात्र त्यागी हैं ।

महावीर को देखा किसने ? अच्छा कर गये तो उनके नाम की दुकाने चला ही रहे है । जय बोल ही रहे हैं । उनकी वाणी सुना ही रहे है । उनके अनेक रूपो मे सघ चला ही रहे हैं । हमको कोसते क्यो ? हमने कौन-सा महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी को मनाने का ठेका ले रखा है ? ठेका लें भी तो कुछ कमाने के लिए ही तो लेगे । सारे ससार का विसर्जन तो कर दिया, अब तो सग्रह करने दो, यह आज के प्राय सभी श्रमणो एव अग्र नेताओ की भाव-भाषा बोल रही है । यदि ऐसा नही है तो एकता बनाने और मताग्रह छोडने मे इनको क्या जोर पड रहा है ? गाँठ की कौनसी पू जी खर्च करनी पड रही है । अपने जीवन व्यवहार का सारा बोझ समाज पर डाल रखा हे और सघ को विशृ खलित कर अपना यश विस्तार का बोझ भी समाज पर, यह कितनी विडम्बना है ?

इन सप्रदायवादियो ने २५००वी निर्वाण शताब्दी की महा-सभा मे भी घेरे डाल रखे हैं । इन बडे घेरो मे भी एकता के खुले विचार उसके प्रकाशन मे छप नही सकते । कई सप्रदाय के मासिक प्रकाशन तो ऐसे विचार छापने मे कतराते हैं । इतनी व्यापक साम्प्रदायिकता यदि जैन धर्म मे पनपा रहे है तो सिर्फ साधु समाज के अग्र नेता ही पनपा रहे है । मुझे ऐसा मालूम होता है कि इन सभी

मैं उन सभी विद्वानो, विचारको, समाज सुधारको एव धर्म प्रचारको को आमन्त्रित करता हूँ कि यदि आप उपरोक्त विचारो के समर्थक हैं, तो शीघ्र मुझे अपनी स्वीकृति लिख भेजें। ऐसे साथियो का एक सघ बनाना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि इन सभी साथियो के थिव शरीरो का धर्म प्रसार हित सही उपयोग हो सके।

—जैन प्रकाश



खूब छक होकर छानते है, खाते-पीते, पहनते और अच्छे मकानो मे रहते है। सड-मुसड या मुस्तडे वनकर ससार के व्यवस्थित व्यवहार को विगाडते है।

समय था, कुछ अच्छे आत्मान्वेपको ने ससार से अलग होकर गवेपणा- ; आत्मा की, परमेश्वर की, विधि और विधान की खोजे की। उनका । सदा अन्वेपणो मे लगा रहता था। अव आत्मवादियो का समय फिसाद कराने मे, साम्प्रदायिक मठो को चलाने मे और गुल-गप्पे ने मे पूरा होता है। आत्मा की गवेपणा करने वाला अन्वेपक अव ने पर भी नही मिलता। अभी का वैराग्यमय साधुओ का वर्ग, । पाखडियो का समूह मात्र है। मुफ्त का माल उडाना, धर्म के पर अपनी पूजा कराना, यही मात्र उनका काम रह गया है।

विरक्त कहलाने वाली सप्रदायो के आचार्य और साधु गृहस्थो भी वढ कर सपत्ति और ऐश्वर्य को धारण किये हुए हैं। एक नही क प्रकार के भोगो को भोगते हुए भी वे अपने सप्रदाय गादीवर होने के कारण पूज्य माने जा रहे है। गृहस्थ वर्ग अध- वासो से अपने वाप-दादाओ द्वारा मानी हुई सम्प्रदायो को महत्त्व । आ रहा है। कई प्रवुद्धजन भी उनके शिकजो मे फसे हुए दिखाई है। ससार के कृत्य तो समझ मे आ सकते है लेकिन इन विरक्तो समाज के ससार को समझना वडा मुश्किल है। ये लोग सदा गृहस्थ ों से गृहस्थो को छुडा कर, अपने वाडे मे फँसाते रहते हैं। आज क के नाम पर ईश-दर्शन के लुभावने हथियारो से और अनन्त नन्द की प्राप्ति के अदृष्ट लाभो से साधारण और पढे हुए समाज भावुक लोगो को आकर्पित कर निठल्ले समाज का वृद्धिकरण किया रहा है। यही एक वडा आश्चर्य है कि गृहस्थ समाज भी ऐसे मानव ्रहो को मान्यता देता हुआ अपने को धन्य मान रहा है।

जितने भी प्रचारक और जगत् के उद्धारक हुए उन्होने मानव

विस्तार करना चाहता है । इस क्रिया से स्वभावत हृदय की सरलता नष्ट हो जाती है, कटुता वढती है और द्वेपमय वातावरण वन जाता है । साम्प्रदायिक भावना की तीव्रता से मानव-मानव की हत्या जैसा नृशस कार्य भी कर वैठता है । एक सम्प्रदाय वाला अपने आचार्य मे निष्ठा रखता हुआ, दूसरे धर्म की निन्दा करता है । आचार्य के वताये हुए मार्ग को सम्यक्त्व का सोपान कहता है और अन्य के पथ को मिथ्यात्व का पोपक घोपित करता है । स्वय को सम्यक्त्वी तथा अन्य को मिथ्यात्वी कहता है । इतना ही नही, एक साधु वर्ग दूसरे साधु वर्ग को और एक श्रावक वर्ग दूसरे श्रावक वर्ग को भी हीन दृष्टि से देखता है । इस तरह के घृणित प्रचार से धर्म की जगह अधर्म, पुण्य की जगह पाप तथा अहिसा की जगह हिसा को स्थान मिल जाता है ।

र्तको की मान-पूजा के अखाड़े

वह धर्म किस काम का–जिस धर्म से शान्ति न मिले और पर का प्रेम नष्ट हो जाय । क्लेश, ईर्ष्या, दभ, पाखण्ड और हिसा प्रवृत्तिया फैले, वह धर्म कैसे हो सकता है । धर्म सदा सवसे मिलकर ा सिखाता है । धर्म आत्मा मे शान्ति पैदा करता है, कपायो को : करता है । धर्म शान्ति और व्यवस्था फैलाता है । जब धर्म, पथ : सम्प्रदाय के रूप मे उभर कर आता है, तब वह मानव समाज के : विनाशकारी बन जाता है । जितनी भी सम्प्रदायें हैं और जितने पथ हैं, उनके प्रवर्तक आचार्य एव भक्त लोग स्वत्व से प्रेम करने ते होते हैं और परायो से घृणा करने वाले होते हैं । ऐसी सम्प्रदाये र पथ, धर्म नही कहे जा सकते है । वे तो उन प्रवर्तको की मान- ा के अखाडे ही कहे जायेंगे और उनके भक्त अन्धश्रद्धाशील वनकर जन्म और परजन्म को भी नष्ट कर डालेंगे । कुछ अखाडे वाले तो ने होशियार हो गये हैं कि अपनी वाडावन्दी को तो मजवूत वनाते और दुनिया मे अनेकान्त, समन्वय और विश्व-धर्म सम्मेलन के मार्ग

पाती, न ही सबका सर्वमान्य एक स्वरूप ही बन पाता है। यह सब साम्प्रदायिकता का व्यामोह नही तो और क्या है ? क्या जैन धर्म का यही सम्प्रदायमयी आदर्श, विश्व के सामने प्रसारित करना चाहते हैं ? हम दिगम्बरत्व, या श्वेताम्बरत्व, सचेलकत्व या अचेलकत्व तथा अन्य स्त्री मुक्ति आदि के विभिन्न विचार, भिन्नता के पथ समन्वय से एक रूपता नही पा सकते। यदि जैन धर्म की विभिन्न सम्प्रदायें अपना व्यामोह नही छोडेंगी तो विश्व-धर्म के नारे, नारे ही रह जायेंगे।

अहं का पोषण :

आचार्यों और प्रवर्तको तथा समाज के अग्रनेताओ को इस स्थिति पर सोचना है। २५वी सदी के जयन्ती महोत्सव को निरा प्रदर्शन मात्र करना है, तो अवश्य करिये, लेकिन धनपतियो के धन और राष्ट्र के राजकीय पैसे का निरर्थक व्यय, धर्म प्रचार के नाम से क्यो करा रहे हैं ? क्या विद्वान्, आचार्य, प्रवर्तक और नेता अपने अपने नाम के प्रचार-प्रसार के लिए, तो यह सब प्रोपेगेण्डा नही करा रहे हैं ? क्या अहं का पोषण कर धर्म का पाखण्ड तो नही फैला रहे हैं ?

सम्यक्त्व के आइने मे अपने को देखें

मैं उद्घोष करता हू—जनता सदा गतानुगति की लकीर पर चलने वाली है। आपकी भक्त है, धर्म के प्रति और महावीर के प्रति श्रद्धा मे नत है। उसको अपने अहं के प्रचार मे गुमराह मत कीजिये। "साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो।" अपनी-अपनी मान्यता का मोह छोडो। अपनी सम्प्रदाय की परिपाटियो, समाचारियो का व्यामोह दूर करो और सभी जैनियो की सर्वमान्य समाचारी एव धर्म नियम बनाओ और उन्ही का विश्व मे प्रचार करो। ये अहंमन्य पण्डित और धर्म विपरीत धन सग्रह वाले धनिक एक बार अपनी श्रद्धा शुद्ध करें।

विचार, आचार और प्रचार

आत्मा जब अपने उत्कर्ष की ओर बढना चाहता है तो उन्नत विचारो का उद्भव होता है, और विचारो की क्रियान्वयन शक्ति ही आचार के दायरे मे आती है। आचार के वाद प्रचार कार्य ठोस और जगत् के उद्धार के लिए विशेप कामयाव होता है। यह तो रही आत्मा की ओर गति करने वाले मुमुक्ष जन की वात। लेकिन विश्व मे सभी मोक्षार्थी नही होते। इस दुनिया मे जो जिम किसी भी प्रकार आचरण कर जीना चाहते हैं और वैसे ही विचार रखते है। विचार के अनुसार ही प्रचार होता आया है, अत प्रचार भी उनकी चाह के अनुसार होता रहता है।

अव हमे यह देखना है कि जगत् की शाति और व्यवस्था के लिए कैसा रुख अपनाया जावे। विश्व के प्राणी मात्र सुख पूर्वक जीना चाहते है, अत उन्हे शाति और व्यवस्था प्यारी है। हमारा कर्तव्य है कि हम इसी के अनुकूल अपने विचार वनावे और आचरण करें तथा प्रचार-प्रसार करें। यही एक सही मार्ग की कसौटी है। इससे आत्मार्थी जिसे हम किसी दृष्टि से स्वार्थी-अपना भला करने वाला कहते हैं वह भी मुकर नही सकता।

स्वय का भला तभी हो सकता है, जव दूसरो के साथ भला व्यवहार करें। अपनी आत्मा का भला चाहने वाला, जगत् की शाति का परम इच्छुक होगा। अत हमे यह मालूम हो गया कि जगत् के प्राय

प्रेम और सहकार धर्म के मूल पाये है। प्रेम आत्मा से पैदा
ाता है और सहकार ने विचार, आचार और प्रचार बढता-फलता और
ुलता है। सही माने मे आचार की प्रशस्ति मे प्रचार का महकार
वश्यक है। सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और सग्रह नियमन या
ार्जन ये प्रेम के रूप हैं। इनके आचरण से प्रेम की वृद्धि होती हे
र मानव अजात शत्रु, वीतराग, तथा परमात्मा बन जाता है। उत्तम
वारो से प्रेम की प्राप्ति होती है और प्रेममय बन जाने पर प्रेम का
स्तार करने मे विश्व शाति और व्यवस्था की वृद्धि होती है।
स्तार करने का अर्थ प्रचार से है। अतएव आत्मिक उन्नति-चिन्मय
जाने की स्थिति और विश्व शाति के लिए उत्तम विचार, आचार
र प्रचार की परम आवश्यकता है।

सुधर्मा (पाक्षिक)
१५, फरवरी, १९७२



और हो सके तो विधर्मी बने और जिनके सहयोग से अकर्मण्यता का पाठ सिखाया जाय, उनसे सच्चे कल्याण की आशा कैसे की जा सकती है ?

जरा विचार तो करिये, वे क्या कभी किसी समाज को सुधार सकते है ? यदि नही, तो उन्हे यह अधिकार नही कि वे सामाजिक त्रुटिया ही निकालने बैठें। उन्हे चाहिए कि इन बातो पर विचार करें, उचित उपाय सोचें और सोचकर सहयोग दे, न कि सामाजिक आपत्तियो से डरे। प्रतिद्वन्द्विता के समय निर्णय करें कि कौन सत् और कौन असत् है। यदि निर्णय नही कर सकें, तो वह मानसिक त्रुटि ही समझी जायगी। भला, ऐसी परिस्थिति खडी होने पर अपना कर्तव्य छोड देना कितना हीन काम है ? इससे कभी उन्नति नही हो सकती। यदि उन्नति चाहते हैं, तो ध्यान दें—खयाल करें और सोचें कि मै कौन हू, किस रास्ते पर हू ? क्या ध्येय है ? कितना चला हू और कितना बाकी है ?

मनुष्य अनेक विकट उलझनो मे जा गिरता है, पर यदि वह उस वक्त निराश हो जाय, तो फिर सर्वत्र अन्धकार ही समझिये। जब आत्मा और दुष्कर्मो मे प्रतिद्वन्द्विता पूर्ण युद्ध होता है, तब यदि फिसलें तो नीचे मिथ्यात्व रूप कूप और बढें तो सम्यकत्व रूप सुलभ मोक्ष-मार्ग है। ठीक यही दशा वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय कार्यों मे होती है। इन अवस्थाओ को जीतने वाले विजयी होते है।

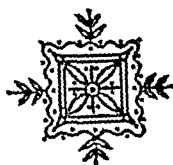
समाजोन्नति की आकाक्षा वाले बहुत हैं, फिर भी सहयोग देने वाले बहुत थोडे हैं। सहयोग देना तो दूर रहा, कार्यकर्ताओ की हँसी उडाना और त्रुटियाँ निकालना ही वे अपना प्रथम कर्तव्य समझते है। ऐसी ही अवस्था मे उनका समाजोन्नति की आशा करना, यह कहा तक ठीक है ?

एक सस्था दूसरी सस्था को नीचा दिखाना चाहती है और इसी कारण से दोषावलोकन करने को उद्यत रहती है। फिर बताइये कि

मनुष्य ससार मे उत्पन्न हो अकाण्ड ताण्डव रचते हैं—किसी को सच्चा, तो किसी को झूठा बना देते है। कोई जाल फैला रहा है, तो कोई रुपया लुटा रहा है। कोई किसी को मार रहा है, तो कोई किसी की रक्षा कर रहा है आदि अनेक कार्य प्रतिदिन होते दिखाई देते है, पर ये सब एक सुख के पीछे ही हो रहे हैं। जब मनुष्य सासारिक पीडाओ मे विकल हो जाता है तब वह या तो ससार से चल बसने की कोशिश करता है या साधु बनकर शान्ति मार्गावलम्बन करता है। सब कार्य करते है अच्छे के लिए, पर हो जाते है, बुरे। कारण यही है कि हम अर्थ और काम मे ही सुख मान बैठे है और रातदिन उसी के पीछे दौडा करते है। जब इच्छा सफल नही होती है, तब दु खी होते हैं। यही तो मानसिक त्रुटि है, भूल है और कमजोरी है। यदि ध्यान रखकर कार्य करे, तो कभी ऐसा मौका नही आ सकता, पर यह सोचे कौन ?

इसीसे आपको स्पष्ट हो गया कि मानसिक त्रुटि ही सबमे विघ्न पैदा करती है, अत इससे जल्दी दूर होने का प्रयत्न करे और दृढ भावना हृदय मे धरे। फिर देखें कि कैसे कार्य सफल नही होते हैं।

जैन प्रकाश
२२ नवम्बर, १९३१



करने के लिए उद्यत प्राणी को चार बातो का खयाल करना आवश्यक है '—देश, काल, द्रव्य और भाव।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—ये शब्द जैनी साधु के मुंह पर जमे हुए हैं और वे इसके अनुकूल करते हैं या नहीं, यही सोचना हमे निराशा मे डुबोता है।

'करना है' कितना आकर्षक शब्द है। करने वाला प्रिय बन जाता है। यह भी जानते है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से किया हुआ ही सफलता की तराजू मे तुलता है। आज मानव समाज को किसकी जरूरत है और हम क्या कर रहे है? इतनी सी बुद्धि हमे प्राप्त हो जाय, तो हम कुछ कर सकते हैं।

आज हमारा समाज धन और धनिको से आप्लावित है, लेकिन अकर्म रोग से पीडित है। 'कुछ करना'—कोई करना नही है। 'करना है'—यह कर्म कहलाता है। समाज मे अकर्मण्यता का पाठ बढता जा रहा है। व्यापार की गति मद पड रही हैं और साधुओ की विरागता की गति भी रुद्ध हो गई है। **साधु अपनी क्रियाशीलता का प्रयोग मान और प्रदर्शन के लिये करते हैं, अतएव थोथे भाषण और प्रदर्शन बढते जा रहे हैं।** नवयुवक इन भडकीले कार्यो से प्रथम आकर्षित हो जाते है, लेकिन बाद मे असरहीन प्रभावहीन और कातिहीन बन जाते हैं।

उपदेश सूत्रो से भरे हैं। भगवान् ने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव देखकर प्रवृत्ति करने का आदेश दिया है। श्रावक व साधु, श्राविका और साध्विया, सभी उसी प्रकार प्रवृत्ति करते हुए अपने को सिद्ध कर रहे हैं। सभी प्रवृत्तिकारक अग अपने को ठीक रास्ते पर मान रहे हैं। अतएव कर्मण्यता का अजीर्ण होना, समाज अपने मुख से नही कहती लेकिन मेरी मान्यता और समाज का दीर्घ अनुभव है कि समाज की अकर्मण्यता का अजीर्ण हो चुका है। अकर्मण्य तो समाज

उपदेश है और उपदेश कानो पर पडता है, लेकिन ऐसा करने से क्या होगा ? हमे क्या मिलेगा ? आदि प्रश्नो ने हमे कर्मण्य बनने से दूर कर दिया है ।

आज का वातावरण—दुनिया मे ज्यो त्यो कर पैसा कमा और मौज कर का उपदेश व्यवहृत हो रहा है । उपदेश और लेख मुन्दर होते हैं लेकिन कार्य स्वार्थमय लोलुपता से भरे है। ऊपर से रगे सियार का 'सेवा और त्याग' मोटो लगा रखा है ।

कमा खाने और दुनिया को लूटने के लिये ये बाते बडे सुलभ हो गये हैं । ये ही कर्म बन गये है ।

कर्म का पाठ उड गया, कुकर्म का पाठ पढाया जा रहा है । मानवो की दया करने वाला मानव लाखो मे एक दिखता है । उसे ये वाक्य सुमधुर लगते है—तू तेरा कार्य करता रह दुनिया किधर भी बदले और फल कुछ भी मिले । ऐसे कर्मवीर दुनिया के भले के लिये सर्वस्व बलिदान करते ह ।

आज का कर्मचारी, आज का पदाधिकारी, आज का कृपक, आज का परिश्रमी और आज का साधक वर्ग ढोग और पाखण्ड से जिसे प्रदर्शन कह सकते है, ठगाई का प्रचार कर रहा है । सभी अपने स्वार्थो की आग मे झुलस रहे है, न स्वत आनन्द पा सकते है न दूसरो को आराम देते है । कभी सेठ मिल बन्द करता है, तो कभी मजदूर स्ट्राइक करता है । कभी कर्मचारी रिश्वत लेता है, तो कभी कृपक अपना अनाज छिपा कर दुनिया को भूखो मारता है । साधक वर्ग आत्म भान को भूल, रस लुब्ध बनता है और पदाधिकारी पथभ्रष्ट बन कर इनाम, भेंट, पद लोलुपता की बख्शीसे स्वीकारता है । यह है इस दुनिया का रग ।

कर्म करने मे सभी निपुण है, नेता और जनता दोनो सावधान

उत्कर्ष या उत्सर्ग

"ससार का वह प्रबल बल कहाँ लुप्त हुआ, जिसने एक बार ही वरन् अनत वार प्रेम-प्रवाह द्वारा अपने अकाट्य अहिंसा सिद्धात विश्व व्यापी बनाया ? वह शक्ति कहाँ विलीन हुई, जो घट-घट मे ानता की, एकता की, उदार भावना की स्रोत बहाती थी ? वह ार्य कहाँ चला गया, जिसके प्रभाव से हमारा यह देश हरा भरा : धन-धान्य निष्पन्न, गोकुल-वृन्द पोषक था तथा व्यापार आदि की टयो से ससार का गुरु माना जाता था ? यह राज्य कहाँ गया, ामे राम-राज्य की प्रबल सत्ता थी, राजा प्रजा का पवित्र प्रेम था, ान दृष्टि और शिष्टता पूर्ण व्यवहार-नीति कुशल था तथा पार- ौकिक सुखो का आह्वान करता था ? वह तेज किस प्रवाह मे वह ;, जिसका भारत-भूमि का एक-एक कण तपश्चर्याधारक स्वियो के स्वेद (पसीने) से भीगा हुआ है—अत्युत्कट मार्गावलम्बन ाध्यात्मिक ज्ञान का पवित्र-स्रोत ससार मे बहा था और उस आत्म-तेज की कातिमय अनत वीर्य निष्पन्न स्थिति को देखने के ा सारा जगत् तत्पर था ? उस निगण्ठ-धम्म के शाति-साम्राज्य को ा हड़प गया, जिसने कि माया रूपी राक्षसिनी की गरदन पर ना झडा फहरा कर ससार मे ममत्व का राज्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिया तथा जिसके पवित्र-शाति-रस सनित नियमो ने बदनीतिया, ाण्डावाद तथा गुण्डाशाही राज्य तृप्त होकर पलने के लिये खूटे बध थ ? वह साधुता कहाँ गई, जिसे कल्याण करने का एक मात्र

वना की वृद्धि होगी। तेरे आने से ही यह अज्ञजिन-समुदाय अपने
त्व की रक्षा करने मे तत्पर हो सकेगा।

ऐ जिन-समाज के जवाबदार जैनियो! क्या आप इस उन्नत
युग मे युग धर्मो की गिनती से भी जैन धर्म को वचित करने जा रहे
रे! आपका वह सघ बल कहा चला गया? जिसके सहा
र्म का झडा सारे विश्व मे फहराने लायक बन सकता है
ो क्या चाह है? उत्कर्ष की या उत्सर्ग की? मालूम होता
को इन दोनो से निराला अपकर्ष ही भाता है। तभी तो सघ
सत्ता मे वृद्धि करने से डरते हैं। अहो! उत्कर्ष की चाह है,
र उत्सर्ग क्यो नही करते। अरे, **इस फूट और अनैक्यमय ममत्व**
ो दूर नहीं करते? जब तक आप शरीर के व्यापारो को ध
रीर से माया वृद्धि दूर नही कर लेगे, तब तक ध्यान ध
मकते। तो फिर इस समाजोत्कर्ष मे भी अपने शरीर और
अत्यन्त निकट ममत्व धर्म को (पथ और सम्प्रदाय प्रवृत्ति को)
कहो कि मान पूजा सम्बन्धी व्यर्थ के दुर्भावो को क्यो नही
और श्रेष्ठ सघ बल की क्यो श्री वृद्धि नही करते? एक
ाप्त करने के लिये असख्य शरीरो का उत्सर्ग करन
तो क्या महावीर के उस पवित्र सघ साम्राज्य की श्री वृ
लिये सिर्फ अपने गन्दे और थोथे विचारो का उत्सर्ग नहीं क
नहीं, कभी नहीं, ऐसा कभी नही हो सकता। भला, जिनत्व
बिल्कुल नष्ट थोडे ही हो गया है? इसीलिये तो बार-बार फौजदार
(सेनापति) अपने सैनिको को रणभेदी की आवाज के साथ पुकारता
है कि उत्कर्ष चाहते हो तो उत्सर्ग की परवाह मत करो, शरीर राष्ट्र
का है और राष्ट्र तुम्हारा है। उत्सर्ग होगा तभी उत्कर्ष
की ध्वजा फहरा सकेगे। क्या ये शब्द इस धर्म साम्राज्य के लिये
अनुपयुक्त हैं?

रक्षक या भक्षक ?

जलती हुई आग मे ईंधन डालने वाला अग्नि को विशेष प्रज्ज्वलित करता है, लडाई के समय किसी भी पक्ष की पीठ ठोकने वाला युद्ध वेग को विस्तृत करता है, उमी तरह हिंसक प्रयोगो मे सहकार करने वाला मौत को मोल लेता है। इस सिद्धान्त की जितनी गहराई तक पहुचा जाय, कम है। मामान्यतया यह नियम है कि पडोसी या प्रेमी को सक्रिय सहयोग करना, हमारा फर्ज हो जाता है। किन्तु मक्रिय सहयोग का पचडा हल करना वडा दुष्कर है।

सामने वाला हथियार से अपने विपक्षी को पराजित करने को तैयार है। तव मक्रिय सहयोग हथियार द्वारा होता है या शान्ति माधना द्वारा? इम प्रश्न के उत्तर जिनानुयायी जैनी भी द्वयात्मक प्रणाली मे देते हैं। (१) पक्ष न्याय का है और हथियारो द्वारा ही न्याय कायम रह सकता है तो देश-प्रतिवध वाले श्रावक हथियारो द्वारा युद्ध मे सहारा दे सकता है; लेकिन वार पहले सामने वाले का हो, तभी यह सभव है। (२) पक्ष न्याय का हो या न्याय से परे हो लेकिन हथियार द्वारा सहकार करना भक्षक वनना है। रक्षक वही हो सकता है, जो दूसरो पर वार करना सीखा ही नही। हथियार से हथियार भिडाना या शरीर की इन्द्रियो द्वारा व्याघात-प्रत्यापात पहुँचाना। भक्षक वनना है। दुष्ट से दुष्ट प्रत्याघाती को प्रेम द्वारा या क्षमा-सहनशीलता द्वारा पराजित करना उमके हृदय को जीतना है, जीवन को परिवर्तित करना है। जैसे को तैसा वाला सिद्धान्त प्रत्याघाती

उत्कर्ष सिद्धात के प्रति अगाध प्रेम और सोत्साह प्रचार मे ही सन्निहित है।

हमारी औपधशालाएँ, पाठशालाएँ, धर्म स्थान के और साधु मस्थाए सभी अहिंसा के स्थान अहिंसक सैनिको के शिविर बन जायें। एक बार फिर अहिंसक मठ देश के कोने-कोने मे कायम हो जाय, तो भावी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो पर शीघ्रतया शाति आधिपत्य पा सकती है।

हमारा भक्षक है वही कालान्तर मे रक्षक बन जाय–ऐसा ही कार्य करना हमारे लिये हितकर है। हिंसक प्रचारो और कार्यों मे किसी भी तरह की मदद करना अहिंसा की जड को काट कर मट्ठा लना है। अहिंसा के विना सत्य, न्याय, समता, एकीभाव आदि सार शातिकर सिद्धातो का पोषण नही हो सकता। जिस दिन यह ार्य विशेप प्रगति करेगा, उस दिन गाधी सरीखा प्रचारक भगवद् रूप पूजा जायगा। जैनी द्वितीय गाधी पैदा नही करेंगे तो इसका श्रेय मार की कोई न कोई जाति करेगी ही, कारण दुनिया मे शाति की ाह दिनोदिन वढेगी और निश्चय वढेगी।

—जैन प्रकाश दि० १२-६-४०

जयन्ती मना रहे हैं ? मुझे तो पूरा शक है कि ये जयन्तिया नही मना रहे हैं। अपितु अपने-अपने मताग्रह द्वारा मुझ महावीर को अपमानित कर रहे हैं। दुराग्रह की आग ने महावीर के असली रूप को, असली सिद्धान्तो को और असली मार्ग को विकृत कर दिया है। फिर भी जयन्ती मनाने का ढोग रच रहे हैं। पिता को मार कर पुत्र शोकाकुल होने का जैसा ढोग करता है, वैसा ही मेरे अनुयायी मेरे सिद्धान्तो की या कर, मेरी जयन्ती मना रहे हैं।

मदमाते मान के पुजारी ! शासन के हाथियो ! आचार्यो ! धनायको ! क्या आपको अपने शासनपति महावीर के गुरुत्व का कुछ ान है ? दिगम्बर, श्वेताम्बर, तेरापन्थी, तारणपन्थी, पीताम्बरी, ानपथी, गुमानपथी और न मालूम क्या-क्या पथ बना डाले हैं। अपनी पनी बुद्धि अनुसार श्रद्धालु अनुयायियो को किस तरह पार्टियो मे डाल र धर्म के नाम पर, मेरे सिद्धान्त के नाम पर, मेरी पूजाओ के नाम या शासन सूत्रो के नाम पर आपस मे क्यो लडा रहे हो ?

क्या मैंने पाखड मे धर्म बताया, अलग-अलग सम्प्रदाय खडे रने मे समन्वय बताया और आपस मे भाइयो को लडाने मे क्रिया ा रूप बताया ? अहिंसा के अवतार, सम्पूर्ण हिंसा के त्यागी साधु माज का, आज का दृश्य देखकर मैं तो बहुत विचार मे पड गया हू।

जब तक जैनियो के सभी फिरको का समन्वय नही होता, जबतक भी जैनी एक मार्ग के अनुयायी नही बनते, जब तक सभी साधु साध्वी, ावक, श्राविकाए एक सघ (वीर सघ) के नीचे आकर कार्य नही रते और जब तक चारित्र और साहित्य की रचना और क्रिया मे कल्पता नही आती, तब तक मेरी पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी मनाना, री खिल्ली उडाना है।

मेरे पट्टनायको ! गादीधरो !! आचार्यो एव सघनायको !!!

मैं कहता हू कि इस प्रदर्शन के ढोग को दूर कर एक वार नही,
र-बार एक मच पर इकट्ठे होकर इस बात का निर्णय लो कि अब
र किस तरह एक ऐसा मार्ग निकाल कर चले कि सही मान मे
५००वा निर्वाणोत्सव वीर शासन का प्रेरक बन जाय । चाहे महामुनि
द्यानन्दजी हो या युग प्रवर्तक तुलसी गणीजी अथवा आचार्य सम्राट्
ानन्द ऋषिजी । इसी तरह अन्य आचार्य, महामुनि, पथ चालक और
ष्ट्र सत हो । उनके दिलो मे एक आग होनी चाहिए, वह अभी तक
ा नही हुई है । एक भूख जागृत होनी चाहिए, जो अभी तक नही
ई है । क्या दिगम्बर, क्या श्वेताम्बर, क्या तेरापथ और क्या साधु-
ार्गी या स्थानकवासी सभी अपनी-अपनी डफली, अपने-अपने ढग से
ाकर निर्वाण महोत्सव की खुशिया मना रहे हे । करोडो, अरबो रुपयो
प्रचार प्रदर्शन, प्रकाशन और वितरण, स्मृति प्रशस्ति के
माकन हो जायेंगे । उनके साथ द्रव्यदाता, प्रेरक और उद्घाटक के
म भी अकित हो जायेंगे, लेकिन महावीर के शासन के लिए, वीर
घ का अनेकान्तमय समन्वय का प्रतीक एक ढाचा बन नही पायगा ।
ही एक विडम्बना है, जो विद्वच्चक्षुगणो के मस्तिष्क मे उठ रही है ।
म की जगह काम को कोई स्थान नही । इन सारे परिनिर्वाण के
ार्यक्रमो मे नाम ही नाम नजर आ रहे है । जिस सिद्धि के लिए इतना
हापोह मच रहा है, उसका कही पता भी नही है और न उसके
ही प्रयत्न ही हैं ।

"तेरापथ सम्प्रदाय जैसी एकता नहीं" यह कहकर पिड छुडा-
र बैठने वाले यशस्वी मुनिगणो और आचार्यो ! अपना ममत्व
सर्जन करो और सारे वीर समाज का एक अनूठे ढग से समन्वय पूर्वक
क नया ढाचा बनाओ । सभी सम्प्रदायो और उनके मार्गो को समी-
रण कर एक सघ बनाओ, फिर आगे बढो । सारा विश्व आपके चरणो
आ झुकेगा ।

नेति-नेति कहकर अपने आविष्कार की प्रगति अवरुद्ध कर देता है। नादि और अनन्त का निरूपण मानव मस्तिष्क की सर्वोपरि परिज्ञान ो विकृति का परिणाम है। वर्धमान वीर का अनन्त ज्ञान अनेकान्त प मे प्रशस्त हुआ। यह सबमे पूर्ण और सब दृष्टि मे उपयुक्त जगत् शान्ति एव व्यवस्था का अमोघ अस्त्र है। वर्धमान सदैव वृद्धियुक्त ाना है। जो पूर्ण है, वह वर्धमान है। अपूर्ण है, वह हीयमान है। हावीर की वर्धमानता अनेकात सिद्धान्त की सर्जना मे वर्तमान है। नन्त काल तक वर्धमान एव वर्तमान रहेगा।

अनेकान्त विचारसरणि ही नही, अपितु अनेकान्तमय वर्तन और नेकातमय जगत् का परिवर्तन और सत्ता रूप सत्यापित करने का मूल मत्र । सारा जगत् अनेकान्तमय है, सारे ज्ञान अनेकान्तमय हैं, सारे आवि- कार अनेकान्तमय है और सारे समाज के प्राणियो के व्यवहार अनेकान्त य हैं। अनेकान्त वास्तविक है और अनेकान्तता वास्तविकता है। यथा- ना अनेकान्तता है। महावीर ने सबसे श्रेष्ठ बोध सिद्धात रूप मे अने- ात का दिया आचार विचार और प्रचार मे जहा अनेकान्त है, वहा का सार आनन्द का स्रोत व्यवस्था का भण्डार और शान्ति का साकार प है।

जो विद्वान् महावीर को थोडा समझते है वे कहते है कि वीर विचारो मे अनेकान्त, आचार मे अहिंसा और समाज व्यवहार मे परिग्रह का उपदेश और ज्ञान का वितरण किया। लेकिन जो वीर ी सर्वज्ञता, अनेकान्तता और कैवल्य का ज्ञान रखते है, वे यही कहते कि सारे ससार को सद्वर्तन, सच्चिदानन्द और सर्वज्ञ बनाने मे हावीर ने अनेकान्त सिद्धान्त की सर्जना की। अनेकान्तवाद नही, ाद-सफल-सन्त सिद्धान्त है। एक का नहीं, अनेक-अनन्त का जहा ोध हो, वही अनेकान्त है। सारा विश्व ज्ञान, वर्तन और सिद्धि का ्सार अनेकान्त है।

ाद वास्तव मे कुछ वाद हैं। लेकिन अनेकात अपने आप मे
वाद का प्रतिकार है, विरोधार्थ (उल्टा) है। जो वाद हैं वे
ीय हैं—विवाद युक्त हैं, अत वे एकान्त का पोषण करने वाले
अनकात का अर्थ है—अनेक मे जिसका अन्त है अथवा अनेक का
अन्त है। अर्थात एक का अन्त अनेक में और अनेक का अन्त
होता है वह वाद नही रह सकता, वह सिद्धान्त बन जाता है।
क एक पक्ष का पोषण होता, वाद रहता है। लेकिन अनेक—
ा का जिसमे समावेश होता है वह वाद कैसे रह सकता है?
ोटे बड़े नालो और नदियो की अनेकता प्रत्यक्ष दृष्टिगत होती
ेकिन जब वे समुद्र मे मिल जाती है तो एकता या अनेकता दोनो
लीन हो जाती हैं और सागर बन जाता है। सागर के समान
नेकात है, अतः उसके साथ वाद शब्द का प्रयोग शोभा नही
ता।

जैसे वीर के आगमो मे दृष्टिवाद है वैसे दृष्टिवाद से समष्टिवाद
प्रादुर्भूत होता है। भिन्न भिन्न दृष्टियो से सिद्धान्त को आगम
वचन को और आप्तवाणी को समझा जाता है, लेकिन वाणी
आप मे अखण्ड और अजस्त्र भावो के लिये होती है। तीनो
और तीनो लोक मे जो अबाध्य हो, अकाट्य हो शाश्वत ...
... समान व्यवहृत हो, उसे हम वाद नही कह सकते। वह तो
... है।

जैसे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पचशील
अहिंसा, सत्यांग, प्रेम तथा शांति के ... भिन्न भिन्न रूप है,
... सम्यक् चारित्र के अंग है और पूर्ण चेतन तत्व के प्राप्त ...
के लिये भिन्न-भिन्न मार्गो के अंग है। उसी तरह भगवान महावीर
... धर्म को ... तत्वो को भिन्न भिन्न तरीको से समझाने
... पूर्ण ... का बोधक, उनका अनेकात सिद्धान्त है। जो पूर्ण

नेकानता है। जगत् के जितने धर्म मार्ग हैं, मजहब हैं, पन्थ अथवा वाद हैं, उन सबमे अनेकात का अस्तित्व है, उन सबमे अनेकात वर्तमान है। बिना अनेकांत को समझे उनके स्वभावो का ज्ञान भी नही हो सकता। उनकी अनेकातता ही उनका स्वरूप है। ये सब तत्व, द्रव्य पदार्थ, गुण या धर्म मार्ग अनेकात हैं। यही पूर्ण हैं और अनन्त धर्मात्मक वस्तुओ को समझने के तरीके भी अनन्त हैं। वे सब अनेकात सिद्धान्त के अनन्त रूप हैं। अतएव अनेकात अनन्त किरणो वाला पूर्ण ज्ञान अथवा केवल ज्ञान रूपी सूर्य है, जो वाद न होकर स्वयसिद्ध अनेकात सिद्धान्त है और केवल ज्ञानियो द्वारा ही प्रशस्त किया हुआ है। अल्पज्ञों द्वारा बनाया हुआ वाद होता है। यह अनन्त वादों का अन्त करने वाला अनेकात सिद्धान्त है।

वीर प्रभु ने उस समय के प्रचलित वादो या धर्म मार्गों का विरोध नहीं किया, अपितु उनमे रही हुई सत्यता का विश्लेषण कर समन्वय दृष्टि से सत्य का सही तरीका जगत् के सामने रखा और स्वय ने काम में लिया।

अद्वैतवादी श्री जगद्गुरु शकराचार्य ने भारत के सभी धर्मों और वादो को परास्त कर दिया लेकिन वे अनेकान्तमय वीर-धर्म को परास्त करने मे सर्वथा असमर्थ रहे। वे यो कहते थे कि "यह बहुत बिलो वाला चूहा है, इसे पकड़ना बडा मुश्किल है। एक बिल से पकड़ता हू तो दूसरे मे चला जाता है।" इस तरह जो शकराचार्य पहले अनेकांत को सशयवाद कह कर पुकारते थे, उन्होने भी इसे अनेक बिलो वाला चूहा कह अनेकात की सार्थकता कबूल की। वे समझ गये थे कि यह एकातवाद को स्वीकारता नही है। अमुक अपेक्षा से यह भी सत्य और वह भी सत्य है, ऐसा मानता है। कोई मार्ग और वाद पूर्णतया असत्य नहीं होते हैं और न अपने आप

महावीर का आत्म-दीप और हमारा अनुकरण

सांसारिक कामनाओं का त्यागी, वैरागी, भिक्षुक गणना में आने वाला, श्रेष्ठ सन्त जृंभक गांव के पास ऋजु बालुका नदी के किनारे सामक नाम के कृषक के क्षेत्र में शालिवृक्ष के नीचे गोदुहासन लगा कर ध्यान में तल्लीन हो, अन्तरात्मभावों में विचरण कर रहा था।

वह समय मदोन्मत्त कषायांकुर की वृद्धि करने वाली वसन्त ऋतु एवं सब रमणीय, कांति धारक, मनमोहक, पृथ्वी का शृंगार करने वाली स्वच्छाभ्र नभ और श्वेत चन्द्रिका से अमृत धार बरसाने वाली, कण-कण में मस्ती धुन सवार करने वाली कामाग्नि उत्पादक ऋतु का अवसान का था। वह जरा से जर्जरित हो जीर्ण हो गई थी। उसके दिन निकट आ लगे थे। प्रचण्ड ग्रीष्म अपनी तेजी को संसार पर दिखाने के लिये उसकी झुकी हुई गर्दन पर आ धमका था। संसार में सब निर्भासिता में प्रचुर अपनी धुन रहे थे। सूर्य की दिव्य कांति अब

महावीर का आत्म-दीप
और
हमारा अनुकरण

सांसारिक कामनाओं का त्यागी, वैरागी, निष्ठुर ममता से परे रहने वाला, श्रेष्ठ मन [illegible] ग्राम में पास ऋजु वालुका नदी के किनारे श्यामक नाम के कृषक के खेत में शालिवृक्ष के नीचे गोदुहासन लगा कर ध्यान में तल्लीन हो, अन्तरात्मभावों में विचरण कर रहा था।

वह समय [illegible] की वृद्धि करने वाली बसन्त की एक मात्र रमणीय, शान्ति दायक, मनमोहक ऋतु [illegible] करने वाली, स्वच्छ आभ्र नभ और श्वेत चन्द्रिका से मधुर प्यार प्रदान करने वाली [illegible] में मस्ती घुल [illegible] करने वाली [illegible] वैशाख-शुक्ला का अवसर था। [illegible] हो गई थी। उसके दिन निकट आ रहे थे। [illegible] अपनी [illegible] को संसार पर दिखाने के लिये उसकी [illegible] हुई [illegible] पर आ पहुँचा था। संसार में सब [illegible] के [illegible] दबा कर नष्ट हो रहे थे। सूर्य की [illegible] शान्ति पर मनुष्य के हृदयों में [illegible] कर रही थी।

और वैशाख शुक्ला १०मी को हमारी प्रतीक्षा [illegible] [illegible] प्रभात को [illegible] करने वाली [illegible]

करने के लिये उद्यत हो गया है। जिनका ध्यान सदैव यह आत्मा बना रहा था आज उस वीर पुजारी ने अपने मन को विकारादि से हटाकर आत्मानुकूल बना दिया है। अब मन जैसी स्वतन्त्र विचरण करने वाली वस्तु और इन्द्रियजनित कोई दुःख आत्मा में रहे ही नहीं। उपनिषदों में कहा है—"तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमपदम् ॥ तस्मिन् मनो विलीयते मनसि संकल्प विकल्पे दग्धे पुण्य पापे सदाशिव ।" शुद्धात्मा सर्वावस्थितः स्वयं ज्योति शुद्धो बुद्धो नित्यो निरंजन शान्त प्रकाशयते।"

इसी तरह योगात्मा का आत्म दीप स्वयं ज्योति रूप शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निरंजन और शान्त प्रकाश से युक्त हो गया। संसार का ही स्वतन्त्र हुआ। वीर की ज्योति आनुभविक दशनों में लीन हो गई। उद्दाम कामनायें अपने पति के छूट जाने से कहां विलीन हो गईं? दुःशासी कषायादि रजनीचर अपना समूह लिये न मालूम कहाँ खो गये? कहने का तात्पर्य यह है कि वीर का आत्म-दीप आज अपार प्रकाशक अनन्त प्रकाश रश्मियां ले बिना तेल बत्ती वाला ऐसा तेज छिटका रहा है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम् ।
नेमा विद्युतोभान्ति कुतो यमग्नि ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं ।
तस्योभासा सर्वं मिद विभाति ॥

क्षण भर के लिये दुनियाई व्यापार बन्द हुए। तीनों लोक में शान्ति छा गई। देवेन्द्र आकाश मार्ग से नीचे उतरे। चारों दिशा कुसुमों की वर्षा हुई और वीर की जागृत करने को उत्सुक हुये। तीनों लोक में प्रकाश की एक लहर सी दौड़ गई और नरक प्राणी सुख स्थिति में रहते भी, पर क्षण भर के ही वह सुख भोग न हो सका।

वीर-निर्वाण के पश्चात् देवों ने उनके केवल ज्ञान की प्राप्ति रूप याने श्रेष्ठ मत का ज्ञान प्रकाश किस ढंग का था यह बताने के लिये रत्न दीप भारी पृथ्वी पर जलाकर उस दीप का अनुकरण करने के लिये दुनिया को सच्चा रास्ता बताया, क्योंकि वे दिखा नहीं कर सकते थे, अतः उन्होंने आडम्बर ही कर दिखाया और हम भोले मानव उनकी थोथी नकल कर तेल-दीप, विद्युद्दीप और लक्ष्मी पूजन का रोशन-दीप जलाकर ही खुश हो जाते हैं।

अब देखिये और तुलना कीजिये वीर का आत्म-दीप, सुरों का रत्न दीप और आपका अप्राकृतिक दीप, इनमें कौनसा दीप श्रेष्ठ है और कौन से दीप की दीपावली मनानी श्रेयस्कर है?

जैनियों! जरा न ज्ञान-क्रियाभ्याम् की दो पाँखों से बने जैनियों और द्विजो-श्रावकों! अहिंसा के रागी बने हुए त्यागियों! श्रमणों! महावीर तत्व के अनुयायी ब्राह्मणों! वाणिज्य-गोपालन आदि कर्मों में लगे वैश्यों और समाज की रक्षा करने वाले क्षत्रियों! क्या अनादि (जैन धर्म को दान् विशाल दृष्टि को देखकर) क्यों नहीं आत्म-रक्षा करते हो। अब भी अन्धानुकरण कर भूले ही जाओगे? क्या निर्वाणोत्सव दीप जला कर और लक्ष्मी पूजन कर ही मनाओगे? जानकर भूलें करते हुए भी प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप का कोशिश भी नहीं करोगे? २५०२ वर्ष पूर्ण हुए वीर निर्वाण को हुए; लेकिन उनके बाद अभी किसी ने यह भी सोचा कि वीर ने जैसा कष्ट उठा कर हमारा उत्थान किया था। क्या हम अब भी ज्ञान द्वारा सद्बोध कर उसकी सम्यक् की आराधना कर सकते हैं या नहीं?

वीर-प्रभु ने तप, ध्यान और ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा का प्रकाश प्रदीप्त किया था, उस समय के [illegible] को [illegible] कर सद्ज्ञान सन्देश का प्रचार किया। [illegible] लिए [illegible]

पालिटिक पचड़ों में फसना, हड़ताल आदि कार्यों में अगुआई करना और जातीय झगड़ों में अपने को डालना विद्यार्थी-जीवन के कार्य नहीं हैं। विद्यार्थी अपने आप में एक अधूरा व्यक्ति होता है और उसे शिक्षा के माध्यम से पूर्णता प्राप्त करनी होती है। जीवन के लक्ष्य बिन्दु को जानकर उसका प्रशिक्षण प्राप्त कर सफलयोगी बनना है।

विद्यार्थी ज्ञान का अपमान क्यों करता है? यह रट रट कर समझ हो गये, तोता रटन्त और यह भी भार रूप (शिक्षा प्रणाली में) बन गया है। रटना और जबरदस्ती से पढ़ना—ये सब कार्य मानसिक तनाव पैदा कर शिक्षा के प्रति अरुचि पैदा करते हैं। अतः बच्चों में शिक्षा के प्रति भूख पैदा करना परमावश्यक है। जब तक भूख जागृत नहीं, ज्ञान भी नुकसानदायी और रोगवर्द्धक बन जाता है। यही ज्ञान अपच भी है। जिस व्यक्ति को जाना है उस दिशा का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। अन्यथा निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति में भटक जाता है। उसने सही मार्ग प्राप्त करना मुश्किल ही है। शिक्षा जो सही रूप में शिक्षा का ग्रहण करता जाता है, अतः विद्यार्थी कहलाता है। बच्चों को भूख या प्यास यदि शिक्षा की न है, तो वह नाम मात्र का विद्यार्थी है और उसका पढ़ना भी नाटक है।

बच्चों को पिता विद्याभ्यास के लिए स्कूल भेजता है क्योंकि पुत्र को पढ़ाना पिता का कर्तव्य है। पढ़ाने से यह बच्चा बड़ा बन जायेगा। पढ़ाना इस समय की परिपाटी है। बच्चों की शर्म से पिता इनके लिए पैसा खर्च करता है दुःख उठाता है, बच्चे के साथ स्वयं पढ़ाने में श्रम करता है। लेकिन बालक को पढ़ने की भूख जागृत नहीं होती है और न पढ़ने के महत्व को समझ पाता है। इसलिए ऐसे बच्चों और बच्चियों को भरकर, अपार ज्ञान एवं तोता रटन्त का स्कूलि ज्ञान दिया जाता है। इसमें कुछ नाम तो स्मरण हो जाते हैं और इसी प्रकार परीक्षा पास कर लेता है और नया ज्ञान पा लेता है। इस

...है और छिपा है, उसे ज्ञान से प्रकट करना है। विकसित कर ...भागों में लाना और शक्ति स्पन्दन करने का प्रयत्न करना ही ...है और यही सार्थ विद्यार्थी-जीवन की सही दिशा है। कर्तव्य है। लक्ष्य बिन्दु है।

शरीर से पुरुषार्थ कर उपलब्धियाँ प्राप्त करें, स्वस्थ रहें और ...यें और जीवनकाल में शक्ति सम्पन्न हों, व्याधि से मुक्त हों, [illegible] जायें—यह काम शारीरिक श्रम का है। व्यवहार में शारीरिक श्रम [illegible] मानसिक श्रम दोनों शारीरिक और सामाजिक विकास में सहा-योगी होते हैं। इसीलिए शिक्षाएँ भी दोनों की मानी हैं। शारीरिक [illegible] द्वारा मनुष्य स्वास्थ्य, कृषि, श्रम और उत्पादन वृद्धि कर सकता है। [illegible] इससे समाधान हो सकता है लेकिन [illegible] विज्ञान [illegible] नहीं है। [illegible] द्वारा मानसिक पुरुषार्थ किया जाता है। शारीरिक श्रम [illegible] आत्मिक विकास नहीं कर सकता है, लेकिन पूरा पुरुष वही है, शारीरिक और मानसिक शक्तियों का पुंज होता है।

विद्यार्थी-जीवन की शिक्षाएँ शरीर को शक्ति सम्पन्न एवं सुदृढ़ [illegible] और बुद्धि वृद्धि करती रही हैं। ये शिक्षाएँ हैं जिनसे [illegible] व्यापक है—असत्य से सत्य की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर [illegible] अंधकार से प्रकाश की ओर [illegible] ये शिक्षाएँ मानव को पूर्ण सच्चिदानन्दमय बनाती हैं। समाज को [illegible] व्यवस्थित करती हैं। [illegible] और जहाँ जीवें, वहाँ शान्ति और व्यवस्था हो, जीवन [illegible] से प्रकाशित हो। [illegible] का नाम न रहे। [illegible] और उनके साथ [illegible] हो। [illegible] जीवन जीते हैं। ऐसी शिक्षाओं के आधार-योग, सदाचार और [illegible] है। विद्यार्थी-जीवन इन्हीं शिक्षाओं की आधार [illegible] है। इसी से सच्चिदानन्द का मार्ग है। अतः, [illegible] धर्म भी यही है।

ति सीखने, समझने और अनुसरण करने, तो विद्यार्थी अपने भावी जीवन, समाज, धर्म और राष्ट्र की यथेष्ट प्रगति साधक एवं सहायक होने के योग्य बन सकते हैं। विद्यार्थी ही भावी राष्ट्र के निर्माता हैं। यदि विद्यार्थी उद्दण्डता की ओर बढ़ें। बड़ों और बराबर की अवज्ञा करेंगे में उतरते रहें, तो स्वयं नष्ट हो जायेंगे और राष्ट्र को भी नष्ट कर देंगे।

सर्वांगीण राष्ट्र, सर्वांगीण मानव सर्वांगीण समाज एवं सर्वांगीण धर्म एक न एक दिन समाप्त होकर रहेगा। समाज की सारी वस्तुएँ हैं सबके लिए उपलब्ध होनी चाहिए, समान रूप से वितरण होनी चाहिए और उपभोग में भी समानता होनी चाहिए। उस दिन इस प्रकार का व्यवहार होगा। स्वार्थ नष्ट होगा और परमार्थ की आवश्यकता नहीं होगी। भी, ऋद्धि सिद्धि का भण्डार सब ही दुनिया पर उतर आयेंगे। शान्ति और आनन्द का अटूट साम्राज्य बन सकेगा। अतः मैं पुनः विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। आप जो चाहते हो, वह आपकी भावना और लगन पर रहेगा। बिना इसके आपकी चाह की पूर्ति करने में ज्ञान और विवेकों की धार का निरर्थक होगा। जिस प्रकार वस्तु की चाह है उस तरह निरन्तर स्वयं आप उस रूप में ढलें और उस चाह पूर्ण का प्रयत्न करेंगे।

कुशल आपको जीवन विकास योग्य, ज्ञान भण्डार एवं [illegible] [illegible] है और उस चाह पूर्ति करने के लिए [illegible] [illegible] गया अनुशासित विद्यार्थी सदाचार का पालन करना आवश्यक है। [illegible] [illegible] [illegible] और जीवन को [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] हैं, जीवन को [illegible] [illegible] चाहते हैं, तो स्वयं वैसा ही बनकर [illegible] के साथ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की प्राप्ति हो। इस तरह [illegible] के [illegible] से [illegible] [illegible] प्राप्त कर सुखी जीवन बना सकते।

—आलोक वादिवी

[illegible] हो या प्रशिक्षण केन्द्र, सब के ५ अंग होते हैं। [illegible] — और [illegible] है, वहाँ का कार्य प्रगतिशील होता है, [illegible] और [illegible] है। [illegible] का पूर्ण [illegible] सिद्धि का [illegible] है। [illegible] पूर्ण [illegible] होता है। [illegible] का पूर्ण [illegible] की पूर्णता है।

[illegible] इस प्रकार हैं — (१) [illegible] (२) [illegible] (३) [illegible] (४) [illegible] और (५) [illegible]

आचार्य — [illegible] होता है। [illegible] में [illegible] होता है। [illegible] और [illegible] निर्धारित किया जाता है। [illegible] है। [illegible] और [illegible] है, [illegible] है। [illegible] के आधार पर [illegible] और [illegible] है, [illegible] है। [illegible] होता है।

[illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] करता है। [illegible] है। [illegible] है।

उपाध्याय — [illegible] है। [illegible]

...गामी नम्र छात्र ही बन सकता है। आज के विद्यार्थी [illegible] और [illegible] की [illegible] के पथ पर चल [illegible] जाते हैं। यही कारण है कि [illegible] संस्थाओं में [illegible] और [illegible] होने लगी हैं। आज गुरु शिष्य का प्रेम [illegible] नष्ट प्राय है। गुरु अपनी ड्यूटी पूरी करता है, विद्यार्थी [illegible] देता है। दोनों में पारस्परिक स्नेह, मान-मर्यादा और [illegible] की वृत्ति नहीं रही है। गुरुभाव विद्यार्थी से दूर हो गये हैं [illegible] शिष्य भाव गुरु से दूर हो गये हैं। इसीलिए आज की शिक्षा [illegible] के लिए अहितकर है। विद्यार्थी को योग्य [illegible] शिक्षा [illegible] होना आवश्यक है। उसकी रुचि के अनुसार विषय के [illegible] का अधिकार भी होना आवश्यक है। गुरु [illegible] कारण की विद्यार्थी [illegible] राजनीतिक [illegible] नहीं पड़े, यह परमावश्यक है। विद्यार्थी के लिए तो विद्या [illegible] है। [illegible] विद्यार्थी की इस प्रवृत्ति से विद्यार्थी [illegible] है, इसलिए उसकी ओर [illegible] है।

संस्कार — छात्र का [illegible] है। विद्यार्थी [illegible] है। उसका [illegible] आवश्यक है। [illegible] विद्यार्थी [illegible] और [illegible] शारीरिक [illegible] है। विद्यार्थी [illegible] और [illegible] [illegible] और [illegible] विद्यार्थी [illegible] और [illegible] और [illegible] है।

आधुनिक धार्मिक-शिक्षा और जैन-समाज

[धार्मिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति पर लेखक की दर्द-कथा]

[illegible]

[illegible]

[illegible] उसमें भी शिक्षा में धार्मिक शिक्षा के [illegible] की [illegible] समाज में सम्बन्ध और उनके द्वारा होने वाला लाभ और [illegible] विचार करेंगा।

आज का जैन-समाज [illegible] के पीछे [illegible] और [illegible] है और [illegible] साधारण [illegible] करता है। [illegible] के लिए [illegible] के लिए [illegible], शिक्षा और [illegible] का [illegible] [illegible] करता है और [illegible] रहा है। [illegible] उनको बार-बार [illegible] है और [illegible] में भी कुछ [illegible] उचित [illegible] और [illegible] जैन समाज में धार्मिक शिक्षा [illegible] है—[illegible]

[illegible] धार्मिक शिक्षा [illegible] धर्माचरण-चारित्र की [illegible] [illegible] करता है। [illegible] और [illegible] भी [illegible], [illegible] आदि के [illegible] और [illegible] है। [illegible] कि [illegible] नहीं होता। [illegible] परिणाम [illegible] है। [illegible] परिणाम [illegible] है।

धार्मिक शिक्षा [illegible] [illegible] आवश्यक है। [illegible] और [illegible] धार्मिक शिक्षा [illegible] है। [illegible] धार्मिक शिक्षा [illegible] करते हैं।



[illegible] देता है और उसके [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

और [illegible] है, [illegible] गणित की [illegible] । [illegible] करता । यदि [illegible] । [illegible] करता । [illegible] का [illegible] करता । [illegible] जाता ।

[illegible] है, [illegible] किया जा सकता है ।

[illegible] करता है ।

[illegible]

बाल-शिक्षा और अनुशासन

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] पीढ़ी का [illegible] है। [illegible]
[illegible] सम्बन्धों के [illegible]
है।

(२) [illegible] है [illegible]

(३) [illegible]

(४) [illegible]

(५) [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] शक्ति का [illegible]

[illegible]

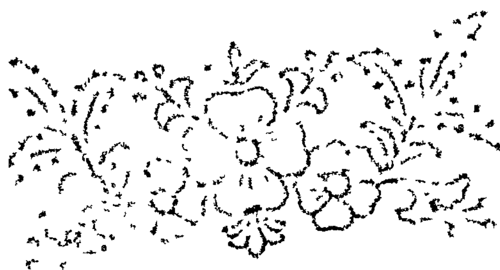
[illegible] और [illegible] शक्ति

[illegible]

[illegible]

[illegible]





[illegible] है।

[illegible]

[illegible]

[illegible] लिये [illegible] है। [illegible]

[illegible] आत्मा को [illegible] के लिये, [illegible] है। यही नहीं, [illegible] के [illegible] और [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

की बात करते हैं। सबसे महान् धर्म तो अपरिग्रह है। अपरिग्रह का मूल अनासक्ति है और उसी में से सारे धर्म निकलते हैं।"

धर्माचार्य ने सबकी बातें सुनी। उन्होंने कहा—"बन्धुओ ! सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य की अपनी-अपनी महिमा है, लेकिन सबसे बडा धर्म तो "आचरण" है।

लेखक ने पुस्तक में बहुत-सी उद्बोधक बातें कही हैं। पुस्तक सात्विक है और सुपाठ्य है। पढ़कर लगता है, कुछ पाया, समय व्यर्थ नही गया।

पुस्तक के लेखक "कला कला के लिए है," इस सिद्धान्त को स्वीकार नही करते, बल्कि बार-बार कहते हैं कि "कला जीवन के लिए है।" पुस्तक में पाठक कला खोजेंगे, तो निराश होंगे। लेखक कवि नहीं हैं, जो प्राय गगन-विहारी होते हैं। वह व्यावहारिक है और पाठकों को शुद्ध व्यवहार की भूमिका पर खडे करने के आकांक्षी हैं। किसी-किसी लेख में उनका उपदेशक का स्वर उभर आया है, पर उस स्वर के पीछे भी उनकी यही कामना दीख पडती है कि मनुष्य, समाज और राष्ट्र शुद्ध बनें, प्रबुद्ध बनें।

पुस्तक के छठे लेख के नाम पर पुस्तक का नामकरण किया गया है। उस लेख में उन्होंने धर्म और सम्प्रदाय के बीच के अन्तर को स्पष्ट किया है। वह कहते हैं,—"जब धर्म पथ और सम्प्रदाय के रूप में उभर कर आता है, तब वह मानव-समाज के लिए विनाशकारी बन जाता है। जितने भी धर्म और सम्प्रदाय हैं, उनके प्रवर्त्तक आचार्य और भक्त लोग स्वत्व में प्रेम करने वाले होते हैं और परायों से घृणा करते हैं। ऐसे सम्प्रदाय और पथ धर्म नही कहे जा सकते।'

पुस्तक की मूल भावना अच्छी है। सामान्य पाठकों के लिए उसमें बहुत कुछ पढने और ग्रहण करने योग्य है। कुल मिला कर

विद्वानों एवं समाजसेवियों की दृष्टि में

[१]

श्री 'उदय' जैन एक शिक्षाशास्त्री कर्मठ व्यक्ति हैं। जैन समाज की उन्नति कैसे हो ? इसकी निरन्तर चिन्ता करते है। उसी चिन्ता मे से श्री जैन शिक्षण सघ की स्थापना निष्पन्न हुई जहा इनकी क्रियाशक्ति सफल हो रही है और दूसरा कार्य है जो उन्होंने समय-समय पर अपने विचार लेखो द्वारा जैन पत्रो मे और अन्यत्र व्यक्त किये। इस दूसरे कार्य की निष्पत्ति "साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो" यह लेख सग्रह है। इसमे श्री उदयजी द्वारा ई० सन् १६३१ से आज तक लिखित लेखो मे से चुन कर कुछ लेखो का सग्रह किया गया है। यह तो सम्भव नही कि आज से ४५ वर्ष पूर्व लिखे गये लेखो और हाल मे लिखे गये लेखो का स्तर समान हो, किन्तु एक बात निश्चित् है कि समाज मे परिवर्तन लाने की भावना जो उनके विद्यार्थी जीवन मे लिखे गये लेख मे है, वही भावना उत्तरोत्तर बलवती बनती गई है और समाज के लिए कुछ कर जाने की भावना सक्रिय हुई। उन्होने शिक्षण सस्थाओ की स्थापना शुरू की, यह एक समाज-परिवर्तन का उत्तम मार्ग है जो उन्होने अपनाया।

विषयो मे धर्म और दर्शन-खासकर जैन धर्म और दर्शन के सम्बन्ध मे कई लेख हैं और शिक्षण के विषय मे भी उनके उस क्षेत्र के अनुभव के आधार पर लिखे गये लेख हैं। जैन समाज की तत्काल मे उपस्थित होने वाली समस्याए जैसे कि सम्प्रदायो की एकता, सम्वत्सरी एकता, महावीर निर्वाण उत्सव इत्यादि के विषय मे भी उनकी सुलझी हुई बुद्धि शक्ति के द्वारा उन्होंने मार्ग-दर्शन दिया है।